पंचम् अध्याय

आलोच्य नाटकों में अभिनेयता तथा उद्‌देश्य।

आलोच्य नाटकों में अभिनेयता तथा उद्देश्य

भारतीय आचार्यों ने वस्तु, नेता और रस इन भेदक तत्त्वों के साथ वृत्ति और अभिनय को भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है। अभिनेयता का संबंध अन्य नाटकीय अंगों के साथ कथोपकथन से भी होता है। अत: अभिनय की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामाजिकों के चित्त को आकृष्ट कर लेना।

अभिनय नाटक, रूपक या दृश्यकाव्य का प्रधान तत्त्व है। समस्त कथावस्तु, चरित्र अर्थों और भावों का प्रकाशन अभिनय द्वारा ही किया जाता है। देशकाल और परिस्थिति के अनुसार अभिनय के साधनों और रूपों में परिवर्तन और विकास होता रहता है। आजकल वैज्ञानिक साधनों से उपलब्ध हो जाने से अनेक अर्थों और स्थितियों का दिग्दर्शन इनके द्वारा कराया जा सकता है और उनके संकेतात्मक साधनों की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार अभिनय के रूपों और संकेतों में भी बहुत परिवर्तन हो गया है। उदा.- स्वगत भाषण, जनातिक, अपवारित, आकाश भाषित आदि के अभिनय अब व्यर्थ हो गए हैं क्योंकि इनको रंगमंच की व्यवस्था या अन्य वैज्ञानिक साधनों के द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

भारतीय आचार्यों ने अभिनय के चार प्रकार बताए हैं - 1. आंगिक, 2. वाचिक, 3. आहार्य और 4. सात्विक।''[1]

1. आंगिक अभिनय -

आंगिक अभिनय का संबंध नाटक में घटित घटनाओं में पात्रों की शारीरिक हलचल, हावभाव, क्रियाकलाप आदि से है। इसकी आवश्यकता इसलिए भी है कि नाटक अनुकृति होने से और अभिनेता के पात्रों के व्यक्तित्व में अपने आपको ढालने से सजीवता आती है। सच्चा अभिनय तभी माना जाता है जब परीक्षक रंगमंच पर अभिनय चल रहा है यह भूल जाते हैं। प्रत्यक्ष जीवन में विविध भावों के या विचारों के प्रकटीकरण के समय जो क्रियाएँ सहज रूप में होती है उनका अभिनय में होना अनिवार्य है।

शरीर के विविध अंगों की प्रक्षेपण प्रक्रिया को आंगिक अभिनय कहते हैं।

2. *वाचिक अभिनय -*

वाचिक अभिनय के अंतर्गत पात्रों द्वारा प्रयुक्त कथोपकथन में आरोह, अवरोह, आवेग, ओजस्विता, सूर, लय और ताल का भान रखते हुए किया जानेवाला उच्चारण अपेक्षित है। इस अभिनय के अंतर्गत कथोपकथन की भाषागत विशेषताएँ प्रकट होती हैं। नाटककार की सफलता में वाचिक अभिनय का हिस्सा महत्त्वपूर्ण है।

वाचिक अभिनय नाटक का शरीर है। आचार्य भरत ने इसे अभिनय का प्रधान अंग मानते हुए वाणी से ऊँची अन्य कोई विधि स्वीकार नहीं की है। उन्होंने इसके अंतर्गत स्वरशास्त्र, व्याकरण और छंदशास्त्र का विस्तृत परिचय बड़े सूक्ष्म रूप में दिया है।

गीत और प्रबंधादि के पाठ को वाचिक अभिनय कहते है।

3. *आहार्य अभिनय -*

आहार्य अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा, अलंकरण, आभूषण, रंगों के प्रयोग आदि भाव और अर्थों के संकेत दिए जाते हैं।

आहार्य अभिनय शेष तीन प्रकार के अभिनय में पूर्णता व सर्वांगता लाता है। वस्त्रालंकारों की उपयुक्त साज-सज्जा को आहार्य अभिनय कहते हैं।

4. *सात्विक अभिनय -*

सात्विक अभिनय में सात्विक भावों, हावों आदि का अभिनय आता है। भाव और रसों का अभिनय सात्विक के अंतर्गत माना गया है। जब कि कायिक अभिनय में चेष्टा, गति तथा अन्य लौकिक क्रिया-कलापों का अभिनय आता है। सात्विक अभिनय सूक्ष्म अंतस्थ भावों का प्रकाशन है जब कि कायिक अभिनय, बाह्य चेष्टाओं और लोक व्यापारों की अभिव्यक्ति साधन है। इस प्रकार दोनों में भेद है।

सात्विक अभिनय में भावों की अधिकता व न्यूनता से क्रमशः नाटक उत्तम एवं अधम बन सकता है।

शास्त्रकारों ने अभिनय की चतुर्मुखी प्रक्रिया संबंधित प्रत्येक संभव बात का विभिन्न महत्त्वपूर्ण विवरणों सहित सूक्ष्म विवेचन इसलिए किया है कि अभिनेता लोग उन चरित्रों के अनुसार

आंगिक, वाचिक सात्विक एवं आहार्य अभिनय इतने नैपुण्य से करें कि उनका पूरा रूप अपनी स्वाभाविकता के साथ सामने आ जाए, जिसके फलस्वरूप दर्शकगण पात्रों के साथ तादात्म्य को प्राप्त होकर नाटक में निहित सामग्री का भली-भांति रसास्वादन कर सकें।

विवेच्य नाटकों में अभिनेयता-

1. आंगिक अभिनय -

'कोणार्क' नाटक में आंगिक अभिनय के अनुरूप घटनाओं का चुनाव तथा पात्रों का विकास होता दिखाई देता है। आंगिक अभिनय अनेक पात्रों के संवादों में मिलता है। निम्नलिखित संवाद दृष्टव्य है -

''विशु - (विचारपूर्ण मुद्रा) कह नहीं सकता पर एक बात अवश्य है। हमने पत्थर में जान ड़ाल दी है, उसे गति दे दी है। (सोत्साह) वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। .... हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।''[2]

''सौम्य - हे हाथ...... (काँप कर हाथों को देखता हुआ) ये हाथ ? (सूखी हँसी)।''[3]

''नरसिंह - (विस्मित) मुद्रा देना बंद किया गया ? कब से ?''[4]

पहला राजा नाटक नें भी आंगिक अभिनय संवादों के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है।

''सुनीथा - (हाथ ऊपर उठाकर। बदला स्वर, मानों किसी और लोक से बोल रही हो) ओ मृत्युलोक के देवताओ ! .....लाओ मेरे प्रतापी पुत्र वेन के प्राण वापस करो ! मैंने उसकी देह पर चमत्कारपूर्ण लेपन कर उसे वापस आनेवाले प्राण के योग्य बना रखा है...... आओ, लौट आओ वेन की आत्मा ! (कोमल स्वर) लौट आओ मेरे बेटे।''[5]

''पृथु - जी ? (हल्की हँसी) यदि आप मेरी तरह हिमालय की गोद में ललकती कुलूत घाटी के निवासी होते तो क्या ऐसा कहते ?''[6]

''गर्ग - (सोचता-सा) बीस बरस पुरानी बात क्यों ले बैठे, अत्रि ?''[7]

'शारदीया' नाटक के पात्रों के संवादों द्वारा भावों और विचारों का प्रकटीकरण हुआ है।

''नरसिंह - (कोमल स्वर) शारदीया रोती नहीं..... अपनी धवल मुस्कान के साथ मुझे विदा करो। इसी ने मेरा साथ दिया है। यही मेरा साथ देगी।

बायजा - (कुछ रूककर, रूद्‌ध स्वर में) नरसिंह ! अपनी कटार देना .... (कटार लेती है।)

नरसिंह - यह क्या कर रही है ?

बायजाबाई बाँई उंगली में कटार का घाव करती है, रक्त निकल पड़ता है।)

बायजा - रक्त का टीका। .... मस्तक आगे करो नरसिंह। (टीका लगाते हुए) विजयलक्ष्मी तुम्हारी सहायता करे .... और मेरी भी।''[8]

''बायजा - बाबा ! .... (रूदन) सरनाबाई, सरनाबाई तू ठीक ही कहती थी। (सरनाबाई दौड़कर आती है और बायजाबाई को संभालती है।) तू ठीक ही कहती थी, सरनाबाई। (सिसकते हुए अपना चेहरा ढंक लेती है। सरनाबाई सहारा देकर ले जाती है)।''[9]

उपर्युक्त संवादों के द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि आंगिक अभिनय के द्वारा पात्रों का चरित्रांकन और नाटक का विकास भी होता है। दिशा-निर्देशों के द्वारा पात्रों के हर्ष, विषाद, अंतर्द्वंद्व, दुविधाएँ, उत्तेजनाएँ विस्मय, सुख-दु:ख, अनिश्चितता, वात्सल्य, करूणा, आशा-निराशा, क्रोध, चिंतन, सोच, दृढ़ता आदि भावों और मनस्थितियों को गहराई से व्यंजित किया है।

संवादों के पहले, मध्य और अंत में दिए गए इन निर्देशों से निर्देशकों, अभिनेताओं और अभिनेत्रिओं को अपनी भूमिका निभाने में विशेष सहायता मिल जाती है।

2. ***वाचिक अभिनय -***

प्रस्तुत नाटक के पात्र अपने संवादों के माध्यम से वाचिक अभिनय करते हैं। उदा-

''नरसिंह - (किंचित तीव्र स्वर) प्रधान शिल्पी ? हमने प्रधान शिल्पी इस युवक को नहीं, तुम्हें बनाया था , विशु !

विशु - किंतु मैंने आज अपना पद इस युवक को अर्पित कर दिया है।

नरसिंह - (और कड़ा स्वर) तुम अपनी सीमा के बाहर जा रहे हो विशु !''[10]

''विशु - (सावेश तेज स्वर में) सौमू, मेरे प्रश्न का उत्तर दो ! .... वह कैसा है।''[11]

''विशु - (आर्त्त स्वर में) तुम जा रहे हो पुत्र ?''[12]

उपर्युक्त संवादो में नरसिंह के संवाद के स्वरों में तीव्रता है आगे उनका स्वर और भी कड़ा होता है। विशु के संवाद में आवेग और आर्तता है, उसके द्वारा उसे अपने बेटे के प्रति ज्यों प्यार है वह झलकता है। नाटक के प्रत्येक पात्र के संवादों में वाचिक अभिनय हमें देखने को मिलता है जिसके द्वारा कथा को एक प्रकार की गति मिल जाती है।

नाटक के प्रारंभ में वाचिक और सूत्रधार आकर गीत शैली में अंक की प्रस्तावना करते हैं। तथा अंत में आकर पूरे नाटक की कथा संक्षिप्त में गीत शैली में बताते हैं।

'कोणार्क' की तरह 'पहला राजा' इस नाटक के पात्रों के संवादों में वाचिक अभिनय दिखाई देता है -

''अर्चना - (साश्चर्य) गा रही हो।

उर्वी - तुम्हारी नादानी का गीत! सुनो - (गाती है)

सोने की थाली सँजोए बैठी हूँ मैं।
पर कोई आता नहीं
आता नहीं जीमनेवाला.....
सोने की थाली और ये दमकती कटारियाँ
भरा है जिनमें लबालब रस का सागर
पर कोई आता नहीं, आता नहीं
रस का लालची, छूता नहीं।''[13]

''उर्वी - गाओ, गाओ उल्लास का गीत, क्योंकि पृथु राजा सूखे और अकाल का चक्रव्यूह तोड़ रहा है। (उर्वी के पास खड़े स्त्री-पुरूष अत्यंत मंद स्वर में गीत की धुन गुनगुनाना प्रारंभ करते हैं।)... प्रयास का गीत, क्योंकि धरती की अनंत संपदा का दोहन शुरू हो रहा है, (गुनगुनाहट बढ़ती है।) विश्वास का गीत क्योंकि पृथु ने धरतीमाता की गंध पहचान ली है, और उसे नया नाम दे रहा है - पृथवी! पृथवी! (गीत मुखर हो उठता है।)

समूह गीत -

नीला था आसमान, नीला विमान
नीलसरोवर में खिली अजान -
अनदेखी सोनजुही!''[14]

इस प्रकार 'पहला राजा' नाटक में पात्र सूर, लय ताल के साथ वाचिक अभिनय करते हैं। जिस के साथ दर्शक तादात्म्य हो जाते हैं।

'शारदीया' इस नाटक के पात्रों के संवादों में भी वाचिक अभिनय स्पष्ट होता है। उदा.

''सिंधिया - (सावेश) गहरी साजिश, शर्जेरावजी भयंकर.....भयंकर विश्वासघात !''[15]

''भाऊ- (स्वगत) माथे पर चोट ! विठ्ठल मारा गया ! उसके बूढ़े पिता को क्या जवाब दूँगा ? (इस स्वगत के बीच कभी बैठता है, कभी चिंतित मुद्रा में इधर-उधर घूमता है...) छि ! मराठा सेनापति रूद्र के तीसरे नेत्र की झलक ठिठके !.... खोलो, महादेव तीसरा नेत्र ! .... तानो भृकृटि !.... युद्धस्थल पर तुम्हारा ही दरबार जुटेगा, भगवान् ! .... आँखों के आगे तुम्हारा अद्भुत तांड़व नृत्य !....कानों में तुम्हारे डमरू की ललकार ! क्या कहा था छत्रपति शिवाजी के कवि भूषण ने ! क्या (भूषण का कवि गुनगुनाता है - पहले मंद स्वर में फिर उठते जोश के साथ स्वर भी उँचा और स्पष्ट हो जाता है।)

कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धंकार ते पहार दरकत हैं।
गिरि कुंभ मतवारे सो नित फुहारे छूटे,
कड़ाकड़ छिति नाल लाखों करकत हैं।''[16]

इस प्रकार 'शारदीया' नाटक में प्रसंग और समय के अनुकूल गीतों को अपनाया गया है। जो नाटक की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण है। नाटक के अनेक पात्रों के संवादों द्वारा वाचिक अभिनय सहज संपन्न हुआ है।

3. *आहार्य अभिनय -*

आहार्य अभिनय में पात्रों की वेशभूषा, रहन-सहन, पोशाक आदि पात्रानुकूल होते हैं। नाटक में पात्रों का स्थान जिस प्रकार है, उसी प्रकार की वेशभूषा, आभूषण, अलंकार होने चाहिए।

'कोणार्क' नाटक में सूत्रधार और वाचिकाएँ इनकी वेशभूषा इस प्रकार दी है जो उस पात्र के अनुकूल हैं - सुत्रधार-रंगीन पगड़ी, लंबी चपकन और अंगवस्त्र पहने हैं; वाचिकाएँ लहँगे और ओढ़नियाँ (यदि वाचक हैं तो पगड़ी-धोती और छोटी चपकन)। बाकी पात्रों की वेशभूषा लिए नाटककार ने पुस्तक में दिए गए चित्र देखने के लिए कहे हैं - उसी के अनुसार पहला चित्र सौम्य श्रीदत्त का है जो नाट्याचार्य की तरह दिखाई देता है। उसके गले में एक हार है तथा हाथों में मंजिरी है जो संगीतक करता

हुआ दिखाई देता है। एक नाट्याचार्य की तरह पात्रानुकूल उसकी वेशभूषा होने के कारण दर्शकों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

'कोणार्क' में दूसरा चित्र उत्कल नरेश नरसिंह देव का है। वे राजा होने के कारण राज सिंहासन पर बैठे हुए हैं ; उनके गले में मालाएँ, कानों में कर्णफूल और सिर पर राज्य का मुकुट है। उनकी वेशभूषा एक राजा की तरह ही है। उसकी वेशभूषा से ही वह एक विद्रोही कलाकार प्रतित होता है। चालुक्य का पोशाक कुछ इस प्रकार का है - पुराने ढंग से बांधी हुई धोती, रेशमी उत्तरीय, मस्तक पर सुवर्णपट, बाजू पर एक बाजूबंद, कमर में कटार। उत्तरीय कुछ लटक रहा है और एक हाथ से उसे पकड़ते हुए आते हैं।

इस प्रकार नाटक में सभी पात्रों की वेशभूषा पात्रानुकूल है। इस वेशभूषा के द्वारा भाव और अर्थों के संकेत दर्शकों को मिलते हैं।

'पहला राजा' नाटक के सभी पात्र पौराणिक लगते हैं। नाटक में किसी भी पात्र की वेशभूषा, रहन-सहन तथा पोशाक के बारे में कोई संकेत नहीं मिलता।

'शारदीया' नाटक में भी किसी भी पात्र की वेशभूषा, रहन-सहन पोशाक आदि के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। नाटक ऐतिहासिक होने के कारण नाटक के पात्रों की वेशभूषा ऐतिहासिक ही होगी।

इस प्रकार आलेच्य नाटकों में आहार्य, अभिनय, पात्रानुकूल तथा प्रसंगानुकूल पाया गया है, जिसके कारण दर्शक नाटक के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं।

4. सात्विक अभिनय -

सात्विक अभिनय में सात्विक हाव-भावों का अभिनय किया जाता है।

'कोणार्क' नाटक में सात्विक अभिनय बहुत से पात्रों के संवादों में मिलता है। उदा.

''धर्मपद - (जो अब तक मूर्तिवत देखता रहा है) बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत ! क्या हम लोग भेड़-बकरियाँ हैं, जो चाहे जिसके हवाले कर दी जाएँ ? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डाँवाड़ौल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कंधो पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैंकड़ों घर उजड़ चुके हैं। वह जिसने कोणार्क के सौंदर्य निर्माता शिल्पियों की ठोकरों से तुच्छ मान ठुकराया ? कलिंग हमारा है और उसके

अधिपति हैं हमारे प्रजावत्सल नरेश श्रीनरसिंहदेव।''[17]

''धर्मपद - देव, अनेक शिल्पी अपने-अपने ग्रामों में स्त्री बच्चों को थोड़ी-सी जमीन और खेती के सहारे छोड़कर आए हैं। वही मूल जीवनस्त्रोत सूख रहा है।''[18]

उपर्युक्त धर्मपद के संवादों से क्रमशः क्रोध तथा दूसरों की भलाई के बारे में सोचना दिखाई देता है। अपने स्वामी के बारे में चालुक्य का दूत कुछ भला-बूरा कहता है तब उसे इतना क्रोध आता है कि उसे वह सात्विक अभिनय के द्वारा प्रक्रट करता है।

'पहला राजा' नाटक के पात्र भी संवाद के माध्यम से सात्विक अभिनय दर्शकों को दिखाकर एक ओर दर्शकों का मनोरंजन करते हैं तो दूसरी ओर अपनी आंतरिक भावनाएँ प्रकट करते हैं। उदा. -

''अत्रि - कितनी टोकरियाँ और कुदालियाँ पहुँचाई आपने शुक्राचार्य ? सूना है जितने के लिए आपने पेशगी ली थी, उसकी आधी भी नहीं पहुँची।.... इतना सारा धन हजम करने की शक्ति भृगुवंशियों में ही है, आचार्य।''[19]

''शुक्राचार्य- गर्ग मुनि, चिंता ? आत्रेय आश्रम और भृगु आश्रम दोनों अच्छी तरह समझ ले कि दृषद्वती का यह बाँध पूरा होते ही - सौवें यज्ञ की पूर्ति होते ही - राजा पृथु, हम लोगों को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकेगा। और ..... उसके मंत्रिमंड़ल में होंगे जंघापुत्र कवष और दस्यु सुंदरी।''[20]

अत्रि और शुक्राचार्य के संवादों से आदर्श जीवन में भ्रष्टाचार तथा उनका उद्वेग और स्वार्थ हमें दिखाई देता है। जो सात्विक अभिनय के द्वारा मंच पर दिखाया जाता है।

'शारदीया' नाटक के पात्रों के संवाद भी सात्विक अभिनय से परिपूर्ण हैं। उदा.

''शर्जेराव- (मदिरा ढालते हुए) जिस तरह मदिरा ढालने के लिए मुझे आपने साकी माना है, उसी तरह हुकूमत की हाला ढालने का एकमात्र अधिकार मुझे दीजिए।''[21]

''जिन्से - ऐसे खुशी के मौके पर अपनी पुरानी विनती दोहराऊँ तो क्षमा करेंगे, आलीजाह।

सिंधिया- कौन-सी विनती ?

जिन्से - नरसिंहराव को छोड़ दिया जाए।''[22]

उपर्युक्त दो पात्रों में हमें सात्विक अभिनय दिखाई देता है। शर्जेराव के संवादों में स्वार्थ की ललक है तो जिन्सेवाले का संवाद दूसरों की भलाई चाहनेवाला है। इस प्रकार 'शारदीया' नाटक के अनेक पात्र अपने संवादों के द्वारा सात्विक अभिनय करते हैं।

सात्विक अभिनय में सुख सुविधाएँ भोगना, आदर्श जीवन में भ्रष्टाचार, क्रोध, घृणा उद्वेग, स्वार्थ, दूसरों की भलाई आदि मनोभावों का चित्रण किया जाता है।

आलोच्य नाटक 'कोणार्क', 'पहला राजा' और 'शारदीया' इनमें सात्विक अभिनय के अंदर जिन मनोभावों का चित्रण होता है वे सभी हाव और भाव दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन के बाद हम यह कह सकते हैं कि आलोच्य नाटकों के कथोपकथन द्वारा अभिनेयता दिखाई जाती है। 'कोणार्क' नाटक स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। नाटककार ने रंगमंच एवं अभिनय की समस्त संभावनाओं को ध्यान में रखकर 'कोणार्क' नाटक की रचना की है। इसका न केवल सोलह बार पुनर्मुद्रन हो चुका है वरन् भारतवर्ष के अनेक नगरों में इसका मंचन भी किया जा चुका है। जो अभिनेयता की दृष्टि से उसकी उत्कृष्टता की ही सूचक है।

अभिनेयता के प्रकारों के अनुसार 'कोणार्क' नाटक की कथावस्तु में अभिनेयता के सभी प्रकार दिखाई देते हैं। नाटक की कथावस्तु जटिल न होकर सरल है, इसके कारण सामान्य दर्शक भी उसे समझ सकता है। नाटक का आकार संक्षिप्त है और पात्रों की संख्या भी इसमें कम है। इसी कारण नाटक के सभी पात्र दर्शकों के ध्यान में रहते हैं। नाटककार ने किसी दार्शनिक गुत्थी को नाटक के माध्यम से सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया है, इसलिए दर्शकों का पूरा मनोरंजन होता है।

'कोणार्क' नाटक की भाषा सामान्य जन की भाषा नहीं है। वह एक विशिष्ट तत्सम भाषा है। लेकिन इस भाषा का प्रयोग, नाटककार ने कुछ ही स्थलों पर किया है। अधिकांशतः सामान्य भाषा का ही प्रयोग हुआ है। नाटक में कथोपकथन और पात्रों के माध्यम से लेखक ने अभिनय का सफल संयोजन किया है।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि 'कोणार्क' नाटक अभिनेयता की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है। उसमें रंगमंच के सभी गुण हैं जिसके कारण कोणार्क एक सफल और मंचीय कृति कही जा सकती है।

'पहला राजा' नाटक आकार में छोटा होने पर भी एक अभिनेय नाटक है। दीर्घ नाटक देखते-देखते दर्शक ऊब जाते हैं। अभिनेयता के प्रकार पात्रों के संवादों के माध्यम से चित्रित हुए हैं। नाटक के सभी पात्रों द्वारा आंगिक अभिनय प्रस्तुत किया गया है। उसमें पात्रों के हर्ष, विषाद, अंतर्द्वंद्व, सुख, दुःख, वात्सल्य करूणा आदि भावों का चित्रण हुआ है। पूरे नाटक में पृथु का अंतर्द्वंद्व तथा आंतरिक संघर्ष दिखाया गया है जो उस पात्र के अभिनय की कसौटी बन गई है। 'पहला राजा' नाटक में नाटककार ने गीतों को भी अपनाया है, जिसके द्वारा पात्रों का वाचिक अभिनय संपन्न हुआ है। साथ में प्रत्येक पात्र के संवादों में आरोह, अवरोह दिखाई देता है। नाटक में आहार्य तथा सात्विक अभिनय में सात्विक अभिनय अनेक स्थलों पर दिखाई देता है। जिसके द्वारा जीवन में भ्रष्टाचार तथा स्वार्थ किस प्रकार फैला है यह मालूम हो जाता है। नाटक में पात्रों का अभिनय और कथावस्तु आज के जनजीवन की होने के कारण दर्शकों का पूरा मनोरंजन होता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम कहेंगे कि 'पहला राजा' बोधगम्य होते हुए भी एक मंचीय नाट्यकृति है।

'शारदीया' नाटक एक ऐतिहासिक नाट्य-कृति है जिसमें लेखक ने इतिहास का सहारा लेकर अपनी कल्पना के द्वारा नाटक की रचना की है। नाटक के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। अभिनय के प्रकारों के अनुसार प्रस्तुत नाटक में आंगिक अभिनय सभी पात्रों के संवादों में दिखाई देता है। बायाजाबाई इस पात्र के द्वारा आंगिक अभिनय ज्यादह रूप में दिखाया गया है। नाटक में लेखक ने गीतों का भी उपयोग किया है। जिसके कारण वाचिक अभिनय प्रस्तुत होता है और दर्शकों का अच्छा मनोरंजन होता है। नाटक की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त और सरल है। नाटक ऐतिहासिक होने के कारण नाटक देखते वक्त दर्शक ऊब नहीं जाते। नाटक के संवाद भी छोटे, चुस्त और प्रवाहमयी हैं। उनके माध्यम से पात्रों का सरस अभिनय होता है। नाटक की भाषा भी जटील नहीं है। सामान्य दर्शक भी इस भाषा को समझ सकता है और नाटक का आस्वाद ले सकता है।

नाटक में पात्रों के संवादों के माध्यम से सात्विक अभिनय भी दिखाया जाता है। शर्जेराव के संवादों से उसकी स्वार्थवृत्ति और जिन्सेवाले के संवाद से दूसरों की भलाई के बारे में सोचना ऐसे सात्विक अभिनय 'शारदीया' नाटक में दिखाए हैं।

निष्कर्ष यह है कि 'शारदीया' एक सफल मंचिय कृति मानी जाती है।

उद्देश्य -

उद्देश्य यह तत्त्व नाटक की आत्मा माना जाता है। क्योंकि बिना किसी सुनिश्चित उद्देश्य तथा प्रेरणा और अनुभूति के धरातल से लिखा गया नाटक शक्ति एवं प्रभावोत्पादकता के गुण से वंचित ही होता है। हर नाटककार की परिस्थितियाँ, स्वभाव एवं रूचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। हर नाटककार अपनी सामयिक समस्याओं और उलझनों को अपने ही दृष्टिकोण से अंकित करके समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। जिससे उसकी वस्तु-निर्माण योजना वा घटनाओं के स्वरूप तथा चारित्रिक उद्भावनाओं में अंतर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त ये तत्त्व तत्कालीन, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों से भी अनुप्रणित होते हैं। अतः नाटककार द्वारा अभिव्यक्त हुए उद्देश्यों में उसके व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण तथा उसकी युगीन चेतना की झलक मिल जाती है।

साहित्य की रचना, यश प्राप्ति, धन प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान अमंगलकर तथ्यों के विनाश तात्कालिक आनंद प्राप्ति तथा कांतासाम्मित उपदेश देने के लिए की जाती है। नाटक का उद्देश्य अन्य साहित्यांगों के समान मानव जीवन की यथार्थ और कलात्मक व्याख्या अथवा विवेचन करना है। कई नाटककारों का उद्देश्य जीवन की विभिन्न समस्याओं, उलझनों, कठिनाइयों तथा संघर्षों की व्यंग्यपूर्ण झाँकी दिखाकर निदान व्यंजित कर देना होता है। ऐसे नाटकों में मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से मिलती है, जिसमें युग चेतना, मनोविज्ञान और व्यक्तित्व विश्लेषण तीनों का सामंजस्य रहता है। आज की अधिकांश समस्यामूलक रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। कुछ नाटककार विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रश्नों और समस्याओं को लेकर उनके यथार्थ चित्रण एवं स्पष्टीकरण के पश्चात् समाधान प्रस्तुत कर देना अपनी समस्याओं का उद्देश्य निर्धारित करते हैं। आधुनिक अधिकांश सामाजिक एवं राजनीतिक नाटक इसी प्रकार के हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन सभी प्रकार के समस्याप्रधान नाटकों की प्रेरणा भूमि तत्कालीन सामाजिक स्थितियाँ एवं सामयिक समस्याएँ रही हैं। कभी नाटककार कथानक अथवा किसी पात्र को मनोवैज्ञानिक, बुद्धिसंगत एवं तर्कसंगत रूप देना आवश्यक समझकर, उसी के अनुरूप अपनी नाट्य-रचना करता है। अधिकांश पौराणिक नाटकों के मूल में यही प्रेरणा कार्यरत है।

कभी-कभी नाटकारों द्वारा किसी नायक के गुणों के उद्घाटन अथवा आदर्शों के प्रतिपादन के अनुरूप ही कथा को ढाला जाता है। आधुनिक ऐतिहासिक नाटक इसी प्रकार के हैं। कभी-

कभी लेखक मानव जीवन की सत्-असत् वृत्तियों में द्वंद्व प्रदर्शित कर अंत में एक की दूसरे पर विजय दिखाना ही अपनी रचना का उद्देश्य मानते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निर्विवाद सिद्ध है कि उद्देश्यों में विभिन्नता हो सकती है किंतु उनका मेरूदंड मानव जीवन ही रहता है। "मनुष्य के शाश्वत भाव, अनुभूतियाँ तथा समस्याएँ ये सभी नाटक में स्थान पा सकते हैं और इनका यथार्थ और आदर्श चित्रण ही प्रमुख रूप से किया जाता है। कोई भी रचना अनुभूतियों व शक्तिशाली भावावेगों और संवेदनाओं से संपन्न होकर उच्च कोटि की बन सकती है, किंतु इन अनुभूतियों एवं भावावेगों की गहनता नाटककार के महान लक्ष्य एवं प्रेरणा पर ही आधारित है।"[23]

नाटककार अपने उद्देश्य को पाठकों एवं सामाजिकों के समक्ष प्रत्यक्ष रूप में न रखकर परीक्षा रूप में घटनाओं पात्रों के कार्यकलापों एवं उनकी बातचीत के माध्यम से व्यंजित करता है।

आलोच्य नाटकों का उद्देश्य -

1. कोणार्क -

जगदीशचंद्र माथुर ने 'कोणार्क' नाटक में जिस कथा को चित्रित किया है वह कथा महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही एक ऐतिहासिक घटना से भी संबंध रखती है। स्वयं नाटककार माथुर का कथन है कि - "ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर तेरहवी शताब्दी तक उड़ीसा में एक के बाद एक विशाल, भव्य और कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ जो आज भी भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी और 'कोणार्क' में तत्कालीन कला के साक्षी रूप में खड़े हैं। इनमें से सर्वश्रेष्ठ मंदिर सूर्य देवता का देवालय, 'कोणार्क' में स्थित है। कोणार्क के देवालय के विषय में कतिपय ऐतिहासिक तथ्य विचारणीय हैं। एक तो यह कि मध्यकालीन उड़िसा के मंदिरों की परंपरा में यह अंतिम भवन है। इसके बाद न जाने कैसे और क्यों उड़िसा में उस कोटि और शैली के मंदिरों का बनना ही बंद हो गया और मानो शिल्पियों के कुल ही तिरोहीत हो गए।"[24] इन मंदिरों को देखने के बाद लेखक के मन में यह सवाल बार-बार अपने आप में इतना सुंदर और अप्रतिम होते हुए भी आज वह ध्वस्त अवस्था में क्यों पड़ा है ? लेखक के मन में और एक सवाल निर्माण हुआ है कि मध्यकालीन उड़िसा का अन्य कोई मंदिर इस खंड़ित और भग्नावस्था में नहीं है, यद्यपि यही सबके बाद बना। .

नाटककार ने इसी प्रश्न को सुलझाने के लिए उड़िसा का भ्रमण किया और लेखक के सामने कई तथ्य आए। इसी संदर्भ में लेखक ने उक्त जानकारियों का विवरण देते हुए अपने नाट्य-सृजन के उद्देश्य को भी स्पष्ट किया है। "मैं अपने उड़िया मित्रों से एक धृष्टता के लिए क्षमायाचना करता हूँ। जिस लोकप्रिय किंवदंती के आधार पर उड़िया श्री गोपबंधुदास के खंड-काव्य 'धर्मपद' कार्तिक घोष के नाटक और अन्य रचनाओं का प्रणयन हुआ, मैंने उसका रूप इस नाटक में इतना बदल दिया है कि शायद वे उसे पहचान भी न पाए और रूष्ट भी हूँ कि क्यों मैंने एक ललीत और करूण रस से पगी कहानी को इस रौद्र रूप में प्रदर्शित किया है। मैं अपना अपराध सहज ही स्वीकार करता हूँ। मुझे उस किंवदंती के करूण लालित्य ने आकृष्ट अवश्य किया किंतु जिस विशाल और पुष्ट कल्पना का कोणार्क मंदिर परिचायक है और जिस संघर्ष प्रधान युग में उसका निर्माण हुआ-उसके मुकाबले में मुझे उड़िया किंवदंती के भावुक और विवश नायक-नायिका क्षीण जँचे। प्रणय की अठखेलियों और भाग्य के थपेड़ों के आधार पर कोणार्क के खंड़हरों का सहारा ले एक रोचक कथापट प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग-युग से मौन पौरूष जो सौंदर्य सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है, कोणार्क के खंड़न के क्षण में फूट निकला हो। चिरंतन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरूष को मैंने वाणी देने की धृष्टता की है।"[25]

लेखक के उपर्युक्त कथन से हम कह सकते हैं कि लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेकर उस अप्रतिम सौंदर्य के (कोणार्क) निर्माता महान शिल्पी के अंतर्द्वंद्व को चित्रित करने का प्रयास किया है और प्रस्तुत नाट्य निर्मिति के पीछे लेखक का यही उद्देश्य है। लेखक जगदीशचंद्र माथुर यह भी कहना चाहते हैं कि विश्वप्रसिद्ध सूर्यदेवता का कोणार्क मंदिर सभी मंदिरों के बाद में बना लेकिन उसका तुरंत ध्वंस क्यों हुआ। इस के पीछे कलाकार के गहन अंतर्द्वंद्व का ही महान उद्देश्य छिपा हुआ है। इसी महान उद्देश्य को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने 'कोणार्क' नाटक की रचना की।

इस प्रकार 'कोणार्क' नाटक लिखने के पीछे लेखक के प्रमुख दो उद्देश्य हमारे सामने आते हैं और गौण रूप में तीसरा -

1. युगाविशेष की कला का चित्रण करना।
2. शिल्पी / कलाकार के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करना।
3. तत्कालीन राजतंत्रिक व्यवस्था का चित्रण करना।

1. युगविशेष की कला का चित्रण करना -

'कोणार्क' नाटक में जिस कथा को चित्रित किया गया है उस में तेरहवीं शताब्दी में निर्मित प्रख्यात कोणार्क मंदिर के निर्माण एवं ध्वंस की कहानी है। लेखक ने अपनी भूमिका में ही लिखा है कि - "कोणार्क के देवालय के विषय में कतिपय ऐतिहासिक तथ्य विचारणीय हैं। एक तो यह कि मध्यकालीन उड़ीसा के मंदिरों की परंपरा का यह अंतिम भवन है। इसके बाद न जाने कैसे और क्यों उड़ीसा में उस कोटि और शैली के मंदिरों का बनना ही बंद हो गया और मानो शिल्पियों के कुल तिरोहित हो गए। दूसरे उस परंपरा के मंदिरों में स्थापत्य, कल्पना और कला की विविधता में यह मंदिर पराकाष्ठा का द्योतक है। मानो वह शैली कोणार्क के निर्माण में अपनी चरमावस्था को पहुँची। तीसरे जहाँ अन्य मंदिर पुरी और भुवनेश्वर जैसे नगरों में बनाए गए, कोणार्क के लिए, ऐसा स्थान चुना गया जिसके आस-पास दूर तक आबादी नहीं थी। पुरी से 19 मील दूर समुद्रतट पर यह मंदिर स्थित है। चौथे इस मंदिर की उपपीठ और दीवारों पर अंकित युगल मूर्तियाँ आधुनिक विचार से अत्यंत अश्लील है। और उनका उद्देश्य समझ में नहीं आता। पाँचवी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह कि मध्यकालीन उड़िसा का अन्य कोई मंदिर इस खंड़ित और भग्नावस्था में नहीं है। यद्यपि यही सबके बाद में बना। मंदिर का मुख्य अंश (विमान) टूटा पड़ा है और कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि मंदिर कभी व्यवहार में लाया गया। मंदिर का मुख्य भाग इस समय पत्थरों का ढेर है। उसका नटमंदिर भी धाराशाई है। विशाल प्रांगण में ध्वस्त मूर्तियाँ और पाषाण खंड़ पड़े हैं। केवल बाकी है, विमान से सटा हुआ जगमोहन यानी मंड़प, जो एक विस्तीर्ण मेधि पर दीपक की अकेली लौ की भाँती खड़ा है।"[26]

लेखक के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि ईसा की सातवी शताब्दी से लेकर तेरहवीं सदी तक उत्कल राज्य में कला अपने चरम पर थी। जिसके फलस्वरूप उत्कल राज्य में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। यह काल महाराज नरसिंह देव के काल का है और महाराज नरसिंह देव कलाप्रेमी तथा कलाकारों का आदर करनेवाले थे।

'कोणार्क' नाटक में लेखक ने इस युग की कलाप्रियता, उसकी उत्कृष्टता एवं युगीन कला के सर्वोत्कृष्ट रूप कोणार्क के सूर्यमंदिर की कथा का वर्णन इसी उद्देश्य से किया है। ताकि उस युग की कला पर प्रकाश पड़ सके और लोगों को उसकी जानकारी हो सके। युग-विशेष की कला का चित्रण करने का यह लेखकीय उद्देश्य इन पंक्तियों में स्पष्ट ध्वनित होता है -

''विशु - (विचारपूर्ण मुद्रा) ''कह नहीं सकता। पर एक बात अवश्य है। हमने पत्थर में जान डाल दी है, उसे गति दे दी है। (सोत्साह) वह भूल रहा है कि वह धरती का पदार्थ है। उसके पैर धरती पर नहीं टिकते। पत्थर का यह मंदिर आज हवा की तरह गतिमान, किरण की तरह स्पर्शहीन, सुगंध की तरह सर्वव्यापी हो रहा है। लेकिन....लेकिन धरती उसे जकड़े हुए है। ईर्ष्या से।..... मुझे लगता है, जैसे अनजाने ही हम लोगों ने पृथ्वी और आकाश के बीच भीषण संघर्ष खड़ा कर दिया है।''[27]

''विशु - वह सारे जीवन का प्रतिबिंब है। देखो हमारे कोणार्क देवालय को आँखे भरकर देखो। यह मंदिर नहीं सारे जीवन की गति का रूपक है। हमने जो मूर्तियाँ इसके स्तंभों, इसकी उपपीठ और अधिस्थान में अंकित की है उन्हें ध्यान से देखो। देखते हो उनमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी सारी वासनाएँ, मनोरंजन और मुद्राएँ चित्रित हैं। यही तो जीवन है।''[28]

इस प्रकार लेखक का यही उद्‌देश्य रहा है कि तत्कालीन कला और उसकी उपलब्धियों को अपनी नाटकीय कथा के माध्यम से प्रस्तुत करना।

2. कलाकार के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करना -

लेखक जगदीशचंद माथुर का इस रचना के पीछे तत्कालीन कला को चित्रित करना अपना उद्‌देश्य मानते हैं तो दूसरी ओर इस चित्रण के माध्यम से कलाकार के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करना यह इस रचना के पीछे अपना दूसरा उद्‌देश्य मानते हैं। विशु अथक परिश्रम से कोणार्क के सूर्यमंदिर को तैयार करता है, लेकिन महामात्य राजराज चालुक्य द्‌वारा मंदिर पर आक्रमण, अपने राजा नरसिंहदेव के साथ विश्वासघात और आक्रमण में अपने प्राणप्रिय पुत्र धर्मपद की निर्मम हत्या होते देख विशु का भावुक ह्रदय प्रतिशोधाग्नि में जलने लगता है। उसका अंतर्द्वंद्व इतना अधिक उग्र हो उठता है कि आततायियों के विनाश हेतु वह अपनी प्रिय कलाकृति सूर्य मंदिर ध्वंस करने को उतावला हो उठता है। कलाकार के इस अंतर्द्वंद्व को नाटककार ने कथा के अंत में प्रस्तुत किया है और इसी अंतर्द्वंद्व को सूर्य मंदिर के ध्वंस का मूल कारण भी स्वीकारा है। विशु के निम्नलिखित संवाद से कलाकार का अंतर्द्वंद्व प्रस्तुत होता है - ''हे सूर्य भगवान, हे भुवनभास्कर ! बारह बरस तक दत्तचित्त हो मैंने तुम्हारे योग्य यह अभूतपूर्व गृह तैयार किया। आज जब उस लगन और तपस्या के बाद तुम्हारी उपासना का अवसर आया तो तुम्हारे शिल्पी को ठुकरानेवाले उनके निर्दोष रक्त से रँगे हाथ तुम्हें अपनाने आ रहे हैं। भगवान, मैं

यह कैसे सह सकता हूँ तुम मेरे सारे जगत् के प्रतिपालक हो, पर मैं कैसे भूल सकता हूँ कि मैं तुम्हारा निर्माता हूँ। तुम मेरे देव ! तुम्हें मेरा कहा करना होगा। कोणार्क शिल्पी की पराजय का प्रतीक नहीं हो सकता। मैं और तुम मिलकर ऐसा नहीं होने देंगे।..... नहीं....नहीं...ठीक है न मेरे भगवान ?''[29]

ऐसा कहकर विशु भवावेश में चुंबक के पास पहुँच जाता है और उसे तोड़ने लगता है। चुंबक के टूटते ही चालुक्य और उसके सैनिक नष्ट होते हैं। इसके साथ मंदिर भी नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार नाटककार ने विशु इस पात्र के माध्यम से कलाकार के युगीन अंतरद्वंद्व को यहाँ पर चित्रित किया है। जो इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य है।

3. तत्कालीन राजतांत्रिक व्यवस्था का चित्रण करना -

उपर्युक्त दो उद्देश्यों के साथ नाटककार का यही भी एक उद्देश्य रहा है कि तत्कालीन राजतंत्रिक व्यवस्था का चित्रण करना। नरसिंहदेव राजराज चालुक्य को अपना विश्वस्त समझकर उत्कल का शासन भार उसके हाथों सौंपकर यवनों को पराजित करने के लिए बंग प्रदेश चले जाते हैं। लेखक ने यहाँ पर दिखाया है हि उनके पीछे मंहामंत्री षड्यंत्र रचाकर उन्हें नष्ट करके स्वयं उत्कल का नरेश बनने की योजना बनाता है। उसमें सफल होते होते रह जाता है।

तत्कालीन राज व्यवस्था में सामंत और श्रेष्ठी गणों का राजा पर काफी प्रभाव रहता था। राजा किसी भी कार्य के लिए सामंतों के साथ सलाह-मशविरा लेते थे। इस प्रकार तत्कालीन राजव्यवस्था में सामंत और श्रेष्टीगण राज्य के आधार थे। निम्नलिखित उदाहरण से इस बात का पता हमें मालूम होता है - धर्मपद के द्वारा जब महामंत्री राजराज चालुक्य की भर्त्सना की जाती है तब नरसिंहदेव कहते हैं - ''अपने मंत्रियों को नियुक्त करने या निकालने में हम सामंतों और श्रेष्ठियों से सलाह लेंगे, शिल्पियों से नहीं।''[30]

इस वाक्य के द्वारा लेखक ने हमें तत्कालीन राजव्यवस्था का परिचय दिया है और यही एक उद्देश्य इस नाट्यकृति का है।

निष्कर्ष -

'कोणार्क' इस नाट्य-रचना के पीछे वैसे तो नाटककार के अनेक उद्देश्य हैं। लेकिन नाटक पढ़ने के बाद नाटककार के निम्नलिखित उद्देश्य हमारे सामने आए हैं - युग विशेष की कला का

चित्रण करना - नाटक में नाटककार ने कोणार्क के अपूर्व सूर्यमंदिर के बारे में बताया है। उसकी सुंदरता भग्नावस्था में ही लेखक के मन पर एक अमिट छाप छोड़कर चली गई और इसलिए लेखक ने इस युगविशेष की कला को अपने नाटक के माध्यम से दर्शकों के सामने लाया। कोणार्क मंदिर से पहले उत्कल राज्य में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ था। वह अंतिम मंदिर होते हुए भी इतना सुंदर मंदिर भग्नावस्था में क्यों है इस सवाल को हल करने के लिए लेखक ने इतिहास का सहारा लेकर कलाकार के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत किया है। नाटककार ने यह भी उद्देश्य यहाँ स्पष्ट किया है कि तत्कालीन राजव्यवस्था का चित्रण करना।

इस प्रकार कोणार्क रचना के पीछे नाटककार जगदीशचंद्र माथुर के उद्देश्य हमारे सामने आते हैं। श्री सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में ''आज के राजनीतिक, आर्थिक संघर्ष के जर्जर युग में कोणार्क द्वारा कला और संस्कृति जैसे अपनी चिरंतन उपेक्षा का विद्रोहपूर्ण संदेश मनुष्य के पास पहुँचा रही हैं।''[31]

2. *पहला राजा* -

जगदीशचंद्र माथुर के पौराणिक ऐतिहासिक आदि सभी प्रकार के नाटकों में एक महान उद्देश्य निहित है - मानवता के लिए उनमें एक संदेश है। 'पहला राजा' भी माथुर की एक सौद्देश्य नाट्यकृति है। स्वयं उनका कहना है - ''हरेक नाटककार को अपने अनुभव के दायरे में से ही समस्याएँ और परिस्थितियाँ बेचैनी करती हैं। उन्हें उजागर करने के लिए वह पात्र और प्रसंग खोजता है। उन्हें ही वह मंच की परिधियों में बिठाता है। यही मैंने इस नाटक में किया है। ....वैदिक और पौराणिक साहित्य, पुरातत्त्व एवं इतिहास, लोकगीत और बोलचाल इन सभी में मुझे प्रतीकों के उपकरण मिले हैं उन समस्याओं को प्रकट करने के लिए जिन से मैं इस नाटक में जूझता रहा हूँ। वे समस्याएँ सर्वथा आधुनिक हैं, वे उलझने मेरा 'भोगा हुआ यथार्थ' है।''[32]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक रचनाकार को अपना जीवनयापन करते वक्त उसके जीवन में जो समस्याएँ आती हैं वह उसे अपनी रचना के माध्यम से समाज के सामने खड़ा करने की कोशिश करता है। लेखक ने प्रस्तुत नाटक के बारे में तो भोगा हुआ यथार्थ है, ऐसा कहा है। आधुनकि जीवन में जो समस्याएँ निर्माण हो चुकी हैं, एक आम आदमी से लेकर राजा तक ये समस्याएँ ग्रस्त कर लेती हैं। लेखक ने जीवन की इन्हीं समस्याओं को उजागर करने की चेष्टा की है। प्रस्तुत

नाटक लिखने के पीछे अनेक उद्देश्य दिखाई देते हैं जैसे आज के जीवन की समस्याओं का चित्रण करना, कर्म करने की प्रेरणा देना, राष्ट्रीय एकता की प्रेरणा देना तथा वर्ण संकरता को हटाना आदि उद्देश्यों- को सामने रखकर नाटककार श्री जगदीशचंद्र माथुर ने 'पहला राजा' नाटक का निर्माण किया है।

'पहला राजा' नाटक लिखने के पीछे लेखक के निम्नलिखित उद्देश्य सामने आते हैं -

i. कर्म करने की प्रेरणा देना।

ii. राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना।

iii. वर्णसंकरता को हटाना।

i. *कर्म करने की प्रेरणा देना -*

'पहला राजा' नाटक में पृथु को कल्याणकारी, कर्मशील रूप में प्रस्तुत कर ग्रामीणों एवं दु:खी जनता के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण का निर्वाह पूरे नाटक में किया है। प्रस्तुत नाटक में पृथु, कवष एवं उर्वी कर्मशील पात्र है।

नाटक में ऋषि मुनि पृथु के पुरूषार्थ से प्रभावित होकर उसे राजपद सौंप देने से पूर्व ही पाँच वचन लेते हैं। इन पाँच वचनों में ब्रह्मावर्त के आश्रमों एवं यज्ञ शालाओं की रक्षा, प्रिय-अप्रिय का विचार छोड़कर सभी प्राणियों के प्रति एक-सा भाव, लोक में धर्म से विचलित होनेवाले को परास्त कर दंड देने का वचन, वेद में दर्शाए गए व्यवहार करने और दंड़ देने के नित्य धर्म के अनुसार शासन का वचन समाज को वर्णसंकरता से बचाने एवं आर्य जाति के रक्त में मिलावट न होने देने आदि आदेश सम्मिलित रहते हैं। ये वचन पृथु को राजा बनाने से पूर्व संकल्प कराते हुए कहलाए जाते हैं। शुक्राचार्य की यह घोषणा कि - ''यह कुशाही विधान है, इसकी गाँठ ही राजधर्म है, जनपद का लोकप्रजा है और इस प्रजा के अनुरंजक आप हमारे राजा हैं।[33] पृथु के उत्तरदायित्वों की ओर इगित करती है। नाटककार की दृष्टि में राजा वही बन सकता है, जिसमें प्रजा के प्रति कर्तव्य व लोकहित की भावना है। यहाँ पृथु एक ऐसा ही राजा है जिसमें कर्तव्य की भावना लबालब भरी हुई है।

नाटक में नाटककार ने उर्वी इस कर्मशील पात्र के द्वारा पृथु को कर्म करने की प्रेरणा दी है। उर्वी कहती है - ''हाँ उठाओ यह धनुष्य और इसकी कोटि से उखाड़ो शिलाओं को, ऊँचे-नीचे टीलों को समतल करो। खेतों में पानी ठहरेगा। मिट्टी में नमी आएगी। हरियाली फैलेगी। बालू से रूकी हुई नदियों की धाराएँ फिर बह निकलेंगी। ....और तब सर्वकाम दुहा गौ की धरती माँ के स्तनों में सैकड़ों

मानव संतान के लिए दूध उतरेगा। ....मैं गौ हूँ, लकिन मुझे दुह्नेवाला कहाँ है ? और मेरे दूध की धाराएँ एकत्र हों ? .....तुम राजा हो प्रजा के नेता हो। तुम्हारा पुरूषार्थ सिर्फ युद्ध और संघर्ष में ही तो नहीं है। मैं वसुंधरा हूँ, मुझे दुह कर अभिष्ट वस्तुओं को निकाल्ने में भी तुम्हारा पुरूषार्थ है और तुम्हारी प्रजा का धर्म है। तुम आर्य कुल के पहले राजा हो। हे राजन् कर्मपुरूष बनो।''[34]

उपर्युक्त उर्वी के संवादों के माध्यम से नाटककार ने राजा पृथु को कर्म करने की प्रेरणा दी है। जिस वक्त राजा पृथु के राज्य में अकाल पड़ता है उस समय राजा का कर्तव्य होता है कि जनता को इस अकाल से मुक्त करना। उसके लिए उर्वी जमीन को समतल बनाकर उससे धान्योत्पादन करने की बात राजा को कहती है।

इस प्रकार यहाँ पृथु एक कर्मशील पात्र है। नाटककार ने इस पात्र के माध्यम से कर्म करने की प्रेरणा दी है और प्रस्तुत रचना के पीछे नाटककार का यही महान उद्देश्य है, क्योंकि आज का मानव कर्म से कोसों दूर भाग रहा है। धरती और उसके बीच का नाता खत्म होकर उसमें एक बड़ी खाई निर्माण हुई है। इसलिए आज के जनजीवन में अनेक समस्याएँ निर्माण हुई हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए नाटककार ने कर्म करने के लिए कहा है।

ii. राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना -

प्रस्तुत नाटक 'पहला राजा' लिखने के पीछे नाटककार का दूसरा प्रधान उद्देश्य है राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना। किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसकी एकता पर आधारित होती है। जिस राष्ट्र में हर समय संघर्ष रहता है उस राष्ट्र की उन्नति अपने आप रूक जाती है। ऐसे राष्ट्र पर (विदेशी) दूसरे राष्ट्र के लोग आक्रमण करके उसे जीतकर क्षीण बनाते हैं। इसलिए नाटककार ने नाटक के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने का संदेश दिया है।

नाटककार ने नाटक में यह दिखाया गया है कि स्वार्थी मुनि राजा वेन की कुशा की अभिशप्त मंत्रों से हत्या कर देते हैं। और समाज के लोगों में मुनियों के प्रति एक प्रकार की उदासीनता छा जाती है। दूसरे, राज्य के लोग ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने लगते हैं। शुक्राचार्य के संवादों द्वारा हमें इस बात का पता चलता है। शुक्राचार्य कहते हैं - ''सुनिए ! वे आए हैं क्योंकि ..... हमारे आश्रम पर सरस्वती पार के दस्युओं, डाकुओं का जबरदस्त आक्रमण हुआ है।

नाटककार ने आगे यह दिखाया है कि यही मुनि अपनी और अपने आश्रम की रक्षा के लिए नए शासक की खोज में लगते हैं, और उसे राजपद देने से पहले ही उसके साथ सौदे की बात कहते हैं। लेखक ने यहाँ ऋषि मुनि, आज के नेता के प्रतीक के रूप में लिए हैं। इन मुनियों की तरह आज के नेता लोग भी राजा के साथ उसे बनाने से पहले ही सौदा करते हैं और बाद में उस पद पर उसे बिठाते हैं। इन नेताओं का राजा के साथ कोई मेल नहीं बैठा तो जिस तरह मुनिओं ने अपने मंत्रों द्वारा कुशा की रस्सी को अभिशप्त कर राजा वेन की हत्या की उसी तरह ये नेता भी विभिन्न नारे, आरोप राजा पर करते हैं और उस पद से उसे हटाते हैं। इतना ही नहीं फिर से अपनी रक्षा का वे उपाय सोचने लगते हैं। जैसे इस नाटक के मुनिवर सोचते हैं।

लेखक जगदीशचंद्र माथुर ने नाटक में इस बात को अत्यंत सजीव रूप में चित्रित किया है। उनका कहना है कि संघर्ष से राष्ट्र की उन्नति नहीं होती इसलिए उस राष्ट्र में एकता होनी चाहिए।

अतः राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना तथा एकता की प्रेरणा देना यह भी एक महान उद्देश्य है।

iii. वर्णसंकरता को हटाना -

उपर्युक्त दो उद्देश्यों के साथ ही नाटककार का तीसरा एक उद्देश्य है - वर्णसंकरता को हटाना। नाटककार का कहना है कि आज समाज में वर्यासंकरता फैली हुई है। आज हम देखते हैं कि समाज में ऊँच-नीच भेद बढ़ गया है। अपनी-अपनी जाति और धर्म के नाम पर लोग लड़ रहे हैं। उच्च कुल के लोग नीच कुल के लोगों को हीन मानते हैं। प्रस्तुत नाटक 'पहला राजा' में भी कवष निषाद कहा गया है और मुनित्रय उसका स्वीकार नहीं करते। कवष अपने कार्य के द्वारा पृथु का विश्वास पात्र बन जाता है।

नाटककार ने नाटक में यह दिखाया है कि कवष निषाद होते हुए भी वह मन में लोककल्याणकारी भावना मन में लेकर जनता को अकाल से बचाने के लिए नदी पर बाँध बंधाने की तथा नहर खोदने की योजना तैयार करता है। बाँध बांधने के लिए स्वयं कवष उर्वी के साथ काम पर चला जाता है। अभी बांध तैयार होनेवाला है। तभी मुनि लोग बांध पर मजदूरों को जाने नहीं देते। बांध को पूरा नहीं होने देते क्योंकि उनके मन में भय है कि अगर बाँध का काम पूरा हो गया तो राजा तथा जनता के बीच में कवष का अनन्यसाधारण ऐसा महत्त्व बढ़ जाएगा, और एक निषाद का राजदरबार में हमसे ऊँचा

स्थान, यह उन्हें पसंद नहीं है। अंत में पानी के कारण बांध बह जाता है और उसके साथ उर्वी तथा कवष भी बह जाते हैं।

निषाद कवष वर्णसंकर से उत्पन्न होने के कारण उसके साथ ऋषि-मुनि बुरा बर्ताव करते हैं, लेकिन अपनी कार्यकुशलता के कारण राजा पृथु उसे सेनापति बनाना तथा उसका ऋषि-मुनियों के द्वारा स्वागत करवाना चाहता है। पृथु का यह संवाद इस बात का द्योतक है - ''तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई कवष। सरस्वती के अंतस के पावन जल का आचमन तुमने किया। आश्रम में मुनिवृंद तुम्हारा स्वागत करेंगे।''[36]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत रचना के पीछे अन्य उद्देश्यों के साथ वर्णसंकरता को हटाना यह भी नाटककार का उद्देश्य है।

निष्कर्ष -

नाटककार ने पौराणिक कथा का आधार लेकर आज के जीवन की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया है। इस रचना के पीछे वैसे तो नाटककार के अनेक उद्देश्य हैं कि जिसमें जनजीवन की समस्याओं का चित्रण करना, अकाल की समस्या चित्रित करना, राजनीतिज्ञों की कूटनीति प्रदर्शित करना, जमीन को समतल बनाने की समस्या चित्रित करना आदि गौण उद्देश्यों के साथ-साथ नाटकार के प्रमुख तीन उद्देश्य प्रस्तुत रचना के पीछे हैं - कर्म करने की प्रेरणा देना, राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना, वर्ण संकरता को हटाना।

नाटककार ने नाटक में पृथु कवष और उर्वी ये तीन पात्र कर्मशील पात्र दिखाए हैं। पृथु राजा होने के नाते कर्मशील पात्र है। वह अपनी प्रजा की रक्षा तथा जनता की सभी समस्याएँ हल करने की चेष्टा करता है। उर्वी और कवष भी कर्मशील पात्र होने के कारण वह भी हमें कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। क्योंकि उर्वी, कवष बाँध बांधने के काम पर अपने जीवन की पूर्णाहुति देते हैं।

नाटककार का दूसरा उद्देश्य राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना है। नाटककार ने यह दिखाया है कि जो मुनि राजा वेन के अत्याचार के कारण कुशा की रस्सी में मंत्र फूंककर उसकी हत्या करते हैं वही मुनि जब दस्युओं तथा डाकूओं का आश्रम पर हमला होता है तब अपने संरक्षण के लिए नए शासक की माँग करते हैं। नाटककार कहना चाहते हैं कि जिस राष्ट्र को शासक नहीं होता तथा राष्ट्र में एकता नहीं होती जिसमें आंतरिक संघर्ष होता है उस राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र आक्रमण करते हैं। इसलिए

राष्ट्र में एकता होनी चाहिए, उस पर राष्ट्र की उन्नति होती है। इसलिए राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना नाटककार का यह उद्देश्य हमें सार्थ लगता है।

वर्ण संकरता की समस्या को भी नाटककार ने चित्रित किया है। कवष जैसा निषाद युवक कार्यप्रवण होते हुए भी समाज उसे अपनाता नहीं है क्योंकि वर्णसंकर से उसका जन्म हुआ है। ऋषि-मुनि भी कवष को अपनाते नहीं हैं। राजा पृथु भी उसे पहले अपनाता नहीं है। लेकिन कवष की कार्यकुशलता तथा उसकी लोककल्याणकारी भावना को देखते हुए राजा पृथु उसे अपनाता है तथा मुनियों के हाथों उसका स्वागत भी करवाना चाहता है।

अत: 'पहला राजा' नाटक के सृजन के पीछे नाटककार के कर्म करने की प्रेरणा देना, राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना तथा वर्णसंकरता को हटाना यही प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

शारदीया -

'शारदीया' इस नाटक की रचना के पहले लेखक को नागपुर म्यूजियम में एक असाधारण वस्त्र देखने को मिला। जिसकी लंबाई पाँच गज से अधिक यानी एक साड़ी के बराबर किंतु उसका वजन केवल पाँच तोले, कपड़े की बुनाई अत्यंत महीन। इस वस्त्र के बारे में लेखक को अधिक जानकारी ऐसी मिली की यह साड़ी ग्वालियर किले के तहखाने में एक बंदी ने बुनाई है। जो सिंधिया की आज्ञानुसार बंदी बनाया गया था।

लेखक प्राक्कथन में कहते हैं कि - ''मन और तन को अंधेरे और घुटन के बंधन में जकड़नेवाले उस कारागार में इस कलाकार बंदी को किस अजस्त्र सौंदर्य से प्रेरणा के विरामहीन घूँट मिले। इस प्रश्न ने मेरी कल्पना को उत्तेजित किया और तभी नरसिंहराव और उसकी प्रेयसी की काल्पनिक मूर्तियाँ सजीव हो गई। मैं जानता हूँ कि इस नाटक के नरसिंहराव का उस अज्ञात बंदी के व्यक्तित्व से संभवत: कोई साम्य नहीं है। शायद यह अज्ञात बंदी बिल्कुल दूसरे ही ढंग का व्यक्ति रहा हो, किंतु नरसिंहराव की जो मूर्ति एकबारगी मेरे मन के दर्पण में उतरी, तो फिर खिंची ही रह गई, उसे मिटाने की क्षमता मुझ में नहीं है।''[37]

उपर्युक्त कथन से हमें यह ज्ञात होता है कि लेखक के मन में जो सवाल निर्माण हुआ था उसका जवाब उन्होंने इतिहास का सहारा लेकर अपनी कल्पना के जरिए ढूँढ़ा। इस विवेचन से हम कहेंगे की प्रस्तुत नाट्य कृति के पीछे लेखक के अनेक उद्देश्य हैं।

1. तत्कालीन कला और उदात्त प्रेम को चित्रित करना।
2. राजनीतिज्ञों की कूटनीति का चित्रण करना।
3. धर्मसहिष्णुता प्रस्थापित करना।
4. तत्कालीन राजाओं की विलासिता का चित्रण करना।

1. तत्कालीन कला और उदात्त प्रेम को चित्रित करना -

लेखक जगदीशचंद्र माथुर कहते हैं कि "मूलतः नाटक की प्रेरणा मुझे उस अज्ञात बंदी की कल्पनातीत अनुभूतियों से ही मिली है, जिसने ग्वालियर किले की काल कोठरी में उस महीन साड़ी के रूप में दिव्य का सृजन किया। कौन जाने भावनाओं के किस तूफान को उसने अपने अंतस्तल में बांधकर अपने हाथों में एक अपूर्व कला शक्ति का संचार पाया।"[38]

यहाँ नाटककार ने इतिहास का सहारा लेकर अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा नरसिंहराव का चित्र अंकित किया है। जिस असाधारण वस्त्र को देखकर उन्होंने अपनी कल्पना का ताना बाना बुनना शुरू किया, उस वस्त्र को बुननेवाला कलाकार उसकी कला और प्रेम को चित्रित करना नाटककार का उद्देश्य बन गया। लेखक ने इतिहास के द्वारा स्पष्ट किया है कि इस कला को कलाकार किस प्रकार सिखते हैं। नरसिंहराव जब बायजाबाई से मिलने आता है तब इस अद्वितीय कला के बारे में बताता है। वह कहता है - "हाँ, कारीगर अपने अंगूठे में सूराख कर लेता है। और तब जो साड़ी बुनती है उसका वजन होता है पाँच तोला। उसे कहते हैं पंचतोलिया।"[39]

नाटककार ने यहाँ तत्कालीन कला का परिचय दिया है। उस समय के कलाकार किस प्रकार महीन तथा असाधारण वस्त्र बुनते हैं और वह भी अपने अंगूठे को ढरकी की तरह इस्तेमाल करके उसमें धागा पिरोकर। उसके लिए कारीगर को अपने अगूंठे को सूराख करना पड़ता है और उसमें वह धागा पिरोकर असाधारण ऐसे वस्त्र बुनते हैं। इसी असाधारण वस्त्र को देखकर लेखक को नाटक लिखने की प्रेरणा मिल गई। इसलिए तत्कालीन कला को चित्रित करना नाटककार का उद्देश्य रहा है।

तत्कालीन कला के साथ-साथ उस समय के कारीगरों का जो उदात्त प्रेम है उसे भी नाटककार ने यहाँ चित्रित किया है। कलाकार नरसिंह जिन्होंने ग्वालियर के तहखाने में अपना बंदी जीवनयापन करते वक्त उस असाधारण पंचतोलिया साड़ी को बुना है। इस नरसिंह का बायजा के प्रति प्रेम था। जिस समय वह बायजा के पास अपने वायदे को पूरा करके मिलने आता है तब उन दो प्रेमियों

की आर्तता हमें दिखाई देती है। नरसिंह कहता है - "दो वर्ष में चंचल तितली मधुरिमाभरी मयूरी बन गई है, यह आज मैंने देखा।"[40] नरसिंह को बायजा एक वीर क्षत्राणी की तरह युद्ध के मैदान में जाने के लिए अपनी रक्त का टिका लगाकर बिदा करती है। आगे उन दोनों का प्यार शर्जेराव को मालूम हो जाता है और शर्जेराव अपनी कूटनीति के द्वारा नरसिंहराव पर राष्ट्रद्रोह का आरोप लगाता है और उसे मृत्युदंड की सजा दी जाती है। शर्जेराव अपनी महत्त्वाकांक्षा का शिकार अपनी बेटी को बनाता है। वह उसके साथ झूठ बोलता है कि नरसिंह युद्ध में मारा गया। बायजाबाई का ब्याह दौलतराव सिंधिया के साथ किया जाता है। सरदार जिन्सेवाले अपनी नई महारानी को ग्वालियर बुलाता है। बायजाबाई महारानी के रूप में नरसिंह से मिलने जाती है और उसे रिहाई की बात कहती है। नरसिंह आहत हो उठता है। वह अपने आपको उस अंधेरे तहखाने में ही रखना चाहता है। वह उस समय अपनी पुरानी प्रेमिका बायजाबाई को पंचतोलिया साड़ी भेंट देता है। फिर एक बार बायजा उसे अपने साथ चलने के लिए कहती है लेकिन वह नहीं जाता वह कहता है - "बायजाबाई ! मैं यही रहूँगा, क्योंकि तुम यहीं हो। महारानी नहीं, बायजाबाई नहीं, लेकिन तुम। तुम मेरी शारदीया। मेरी शारदीया....तुम जो मेरी हो, हमेशा थी, हमेशा रहोगी।"[41]

यहाँ नाटककार ने नरसिंह के द्वारा एक कलाकार का उदात्त प्रेम चित्रित किया है। जो अपने आपको काल कोठरी बंद करके अपनी प्रेयसी को राज्य की महारानी के रूप में देखना चाहता है। इस प्रकार लेखक ने तत्कालीन कला और कलाकार के उदात्त प्रेम को चित्रित किया है जो कि इस नाटक का महान उद्देश्य है।

2. राजनीतिज्ञों को कूटनीति का चित्रण करना -

नाटककार ने प्रस्तुत नाटक 'शारदीया' में राजनीतिज्ञों की कूटनीति का चित्रण किया है। शर्जेराव तथा दौलतराव सिंधिया ये राजनीतिक पात्र कूटनीति अपनाते हैं। शर्जेराव तो अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए अपनी बेटी बायजाबाई का और उसके प्यार का भी गला घोटता है। वह अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए अपनी बेटी के साथ झूठ बोलता है। अपने रास्ते में आनेवाले नरसिंह जैसे काँटे को वह तिनके की तरह बाहर फेंक देता है। अपनी कूटनीति तथा राजनीतिक दांव पेच के द्वारा वह नरसिंह की युद्ध के मैदान की सारी योजनाएँ तहस-नहस करता है। उसकी निजामों के साथ मिली-भगत है ऐसा सिंधिया बताता है। उसी नरसिंह को राष्ट्रद्रोह के अपराध में बंदी बनाकर उसे मृत्युदंड की

सजा दे देता है। लेकिन सरदार जिन्सेवाले के कारण मृत्युदंड़ के अलावा नरसिंह को ग्वालियर के किले में एक बंदी के रूप में रखा जाता है। और शर्जेराव बायजा को बताता है कि निजाम के युद्ध में नरसिंह मारा गया। स्वयं की बेटी के साथ इस प्रकार की कुटिलता शर्जेराव अपनाता है।

शर्जेराव आगे अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए दौलतराव सिंधिया को शराब पीने की नाच देखने की और गाना सुनने की आदतें लगाता है। उसके लिए वह रहीमन नर्तकी को राजदरबार में लाता है। शर्जेराव शराब तथा अफीम पीने की इतनी आदत सिंधिया को लगाता है कि हर समय दौलतराव सिंधिया शराब और शबाब में डूबे रहते हैं। शर्जेराव शराब के नशे में सिंधिया की ओर से मनचाहे आज्ञापत्र लिखकर लेता है। स्वयं नाटककार शर्जेराव के बारे में कहा है - "कैसा भयानक चरित्र था शर्जेराव घाटगे का, कैसे दहला देनेवाले कारनामे थे उसके। इटली के सीजर बोर्जिया की तरह, हृदयहीन शेक्सपियर के इयागो की भाँति चालबाज और निर्मम नादिरशाह की भाँति रक्तपात और नृशंसता प्रेमी। यह शर्जेराव घाटगे आसुरी वृत्तियों का अवतार स्वरूप था।"[42]

दौलतराव सिंधिया की कूटनीति हमें यहाँ दिखाई देती है कि सिंधिया कुल जातिक्रम में हीन था, शर्जेराव उच्च ब्राह्मण कुल के थे। उनकी कन्या से विवाह होने से सिंधिया की कुलवृद्धि होती। इसलिए दौलतराव इस संबंध के लिए और भी लालायित हो गया था।

इस प्रकार नाटककार ने राजनीतिज्ञों की कूटनीति का चित्रण किया है जो कि इस नाटक का एक उद्देश्य है।

3. धर्मसहिष्णुता प्रस्थापित करना -

'शारदीया' नाटक की रचना के पीछे धर्मसहिष्णुता प्रस्थापित करना भी नाटककार का एक उद्देश्य है। भारत-पाक विभाजन से लेकर आज तक हम देखते हैं कि हिंदूओं के प्रति मुस्लिम लोगों के मन में नफरत भरी हुई है। आज भी हम देखते हैं कि धर्म की आड़ लेकर हिंदू और मुस्लिम आपस में लड़ते हैं और आज की यह समस्या तत्कालीन समस्या थी। इसे नाटककार ने अपने नाटक के माध्यम से चित्रित करके धर्मसहिष्णुता प्रस्थापित करने की कोशिश की है। स्वयं नाटककार ने इसके बारे में बताया है कि -"निजाम के राज्य में गोवध बंद रहा और महाराष्ट्र एवं निजाम के मराठवाड़ा क्षेत्र में हिंदू मुसलमानों के आपसी संबंध प्रायः मेलभाव से भरेपूरे हैं।"[43] नाटककार ने नरसिंह के माध्यम से नाटक में इस ऐतिहासिक तथ्य की परिपुष्टि करने की चेष्टा की है। नरसिंह कहता है - "पहली घोषणा तो यह

है कि दोनों राज्यों में हिंदू और मुसलमानों को अपने धर्म-काज करने की पूरी आजादी होगी, न दखन में गोवध होगा, न महाराष्ट्र में खुदापरस्ती पर रोक टोक। और दूसरी घोषणा यह कि हिंदू और मुसलमान दोनों परमात्मा की एक बराबर संतान हैं। इसलिए न हिंदू-मंदिरों पर आघात होगा और ना ही मुसलमान मजारों, पीरों और पैगंबरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रहेंगे। एक माँ की गोदी में दो भाई।''[44]

इस प्रकार नरसिंह इस पात्र के माध्यम से नाटककार ने आज की धार्मिक समस्या का हल ढूँढ़ने की कोशिश की है उन्होंने हिंदू और मुसलमान एक माँ के दो पुत्र हैं ऐसा कहा। दो भाईयों के बीच में जैसा आपसी प्यार होता है उसी प्रकार का प्यार हिंदू-मुस्लिमों के बीच में होना चाहिए। इस प्रकार की धर्म सहिष्णुता नाटक के माध्यम से लेखक ने प्रकट की है और प्रस्तुत नाटक का यह उद्‌देश्य है।

4. तत्कालीन राजाओं की विलासिता का चित्रण करना -

नाटककार ने तत्कालीन राजाओं की विलासिता तथा भोगवादी प्रवृत्ति का चित्रण किया है। राजा दौलतराव सिंधिया शरदोत्सव में अनिंद्य सुंदरी बायजाबाई को पहली बार देखते हैं और उस पर लट्टू होते हैं। उसे पाने के लिए दौलतराव सिंधिया, शर्जेराव की हर शर्त मंजूर करते हैं। उसकी उंगली के इशारे पर नाचने लगते हैं।

नाटककार ने दिखाया है कि सिंधिया को शराब और अफीम पीने की बुरी आदतें लग जाती हैं। निम्न लिखित उदाहरण दृष्टव्य है -

''सिंधिया- (डिबिया में से अफीम निकालकर उंगलियों से टटोलता हुआ) सब्जपरी ! जादूगरनी ! क्या अवध का नवाब भी इसके मजे लूटता है ?

(प्याले से मदिरा पीता हुआ) मंगाइए, शर्जेराव और मंगाइए)।''[45]

इस प्रकार नाटककार ने तत्कालीन राजाओं की विलासप्रियता तथा भोगवादी दृष्टि चित्रित की है। साथ में सिंधिया के दरबार में नाच- गाना भी शुरू हाता है। इसका परिणाम सिंधिया महाराज दिन-रात अफीम तथा शराब के नशे में चूर रहते हैं और शराब की नशा में शर्जेराव दौलतराव सिंधिया की ओर से मनचाहे आज्ञापत्र लिखकर लेता है। इस भोग विलास के कारण राजा का खजाना भी खाली होता है। उनकी विमाताओं पर शर्जेराव कोड़े बरसाता है।

इस प्रकार नाटककार ने तत्कालीन राजाओं की भोग विलासिता का चित्रण किया है जो इस नाटक का उद्देश्य है।

निष्कर्ष -

'शारदीया' एक ऐतिहासिक नाटक है। ऐतिहासिकता का सहारा लेकर अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा नाटककार ने उसे गढ़ा है। लेकिन जिस असाधारण वस्त्र को देखकर नाटककार को नाटक लिखने की प्रेरणा मिली उस वस्त्र को बुननेवाला कलाकार उसकी कला और उसका प्रेम इन दोनों को नाटककार ने चित्रित किया है और वही नाटककार का प्रधान उद्देश्य रहा है - तत्कालीन कला और प्रेम का चित्रण करना। नाटककार का दूसरा उद्देश्य रहा है राजनीतिज्ञों की कूटनीति का चित्रण करना - नाटककार ने शर्जेराव जैसे धूर्त कूटनीतिज्ञ के द्वारा राजनीतिज्ञों की कूटनीति को चित्रित किया है। साथ में बायजाबाई के साथ ब्याह करने की सिंधिया महाराज की भी कूटनीति हमारे सामने आती है।

नाटककार ने नरसिंहराव के द्वारा हिंदु-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन भी किया है। प्राचीन काल से लेकर आज तक हिंदू-मुस्लिमों के बीच में जो अनबन है उसे मिटाने की चेष्टा भी उन्होंने की है। इसलिए धार्मिक सहिष्णुता प्रस्थापित करना यह भी नाटककार का एक उद्देश्य है। दौलतराव सिंधिया की शराब तथा अफीम पीने की आदतें, दरबार में नृत्य-गीत को देखना। तत्कालीन राजाओं की भोग-विलासप्रियता की ओर हमें ले जाते हैं। इसलिए तत्कालीन राजाओं की भोग-विलास प्रियता का चित्रण करना यह भी नाटककार का एक उद्देश्य बन गया है।

उपर्युक्त उद्देश्यों के साथ-साथ नाटककार के अन्य गौण उद्देश्य भी हैं। तत्कालीन संस्कृति का परिचय देना, तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों को चित्रित करना। मराठा सरदारों की वीरता प्रदर्शित करना आदि।

संदर्भ सूची

1. भगिरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ. 107
2. जगदीशचंद्र माथुर, कोणार्क, पृ. 26
3. वही, पृ. 40
4. वही, पृ. 51
5. वही, पहला राजा, पृ. 13
6. वही, पृ. 26
7. वही, पृ. 17
8. वही, शारदीया, पृ. 28
9. वही, पृ. 34
10. वही, कोणार्क, पृ. 49
11. वही, पृ. 68
12. वही, पृ. 76
13. वही, पहला राजा, पृ. 36
14. वही, पृ. 85
15. वही, शारदीया, पृ. 56
16. वही, पृ. 59
17. वही, कोणार्क, पृ. 57
18. वही, पृ. 52
19. वही, पहला राजा, पृ. 92
20. वही, पृ. 93
21. वही, शारदीया, पृ. 92
22. वही, पृ. 95
23. शांति मलिक, नाट्य सिद्धांत : विवेचन, पृ. 77
24. जगदीशचंद्र माथुर, कोणार्क, पृ. 11 (परिचय से)

25. वही, पृ. 12 - 13
26. वही, पृ. 11- 12
27. वही, पृ. 26
28. वही, पृ. 34
29. वही, पृ. 77 - 79
30. वही, पृ. 54
31. वही, पृ. 4
32. वही, पहला राजा, पृ. 5 - 6
33. वही, पृ. 44
34. वही, पृ. 82 - 83
35. वही, पृ. 19
36. वही, पृ. 83
37. वही, शारदीया, पृ. 5
38. वही, पृ. 17
39. वही, पृ. 25
40. वही, पृ. 15
41. वही, पृ. 114
42. वही, पृ. 15-16
43. वही, पृ. 14
44. वही, पृ. 44-45
45. वही, पृ. 90